प्रवचन–3, गाथा–14

यह 'समयसार' ! गाथा चौदह ! शिष्य का प्रश्न था कि तुम शुद्ध आत्मा जो कहते हो, वह क्या है ? जिसका सम्यग्दर्शन हो–जिसका सच्चा दर्शन हो, जिसका अनुभव हो, वह चीज है क्या ? शिष्य का ऐसा शुद्धता का प्रश्न था। अशुद्धता का प्रश्न उसका नहीं था। पुण्य और पाप कैसे हो ? ऐसा उसका प्रश्न नहीं था। इसका उत्तर देते हैं। अपने तो यहाँ तक आया है।

निश्चय से आत्मा मुक्तस्वरूप है। द्रव्य जो है; द्रव्य अर्थात् वस्तु, वह अबद्ध है (अर्थात्) बँधी हुई नहीं है। उसको राग और कर्म के सम्बन्ध का बन्ध नहीं। त्रिकाली चीज है, वह निरावरण है। सूक्ष्म बात है प्रभु ! अन्दर त्रिकाली चीज है, वह निरावरण अबद्ध है। पहला शब्द है न अबद्ध ? उसको बन्ध–सम्बन्ध नहीं। अन्दर ऐसी एक चीज है।

अनन्य है अर्थात् कि अन्य-अन्य भावरूप नहीं है। उसका अनन्य भावस्वभाव चैतन्यरूप है और नियत (अर्थात्) निश्चय है। उसकी पर्याय में अनेकपना दिखायी देता है, वह वास्तविक तत्त्व नहीं है। नियत अर्थात् निश्चय त्रिकाली चीज है, उसे यहाँ नियत कहा गया है। 'निश्चय' कहा गया है। अविशेष (अर्थात्) उसमें विशेषपना भी नहीं है, अर्थात् आत्मा वस्तु है और उसके ज्ञान, दर्शन और आनन्द – ऐसे गुण (हैं) – ऐसा भेदरूप विशेष नहीं; वह अविशेष है (अर्थात्) सामान्य है। सूक्ष्म बात है, भाई !

सम्यग्दर्शन – धर्म की पहली शुरुआत कोई अलौकिक है ! अनन्त काल में इसमें पुण्य–पाप अनन्त बार किये और यह तो चार गति में भटककर मर रहा है। वर्तमान (में) कुछ भी अनुकूलता देखता है, वहाँ आसक्त हो जाता है किन्तु बाहर की ऐसी अनुकूलता तो अनन्त बार मिली है। अन्तर की अनुकूलता इसने कभी भी देखी नहीं और देखने का इसने प्रयत्न भी नहीं किया।

(यहाँ) यह कहते हैं – वह तो अविशेष है। क्या कहते हैं ? वस्तु है, वह विशेष नहीं अर्थात् कि सामान्य है अर्थात् कि गुण-गुणी का भेद भी जिसमें नहीं। आहा...हा... ! ऐसी

वस्तु ! और 'असंयुक्त' है। उसको दुःख का सम्बन्ध है ही नहीं। आकुलता उसके स्वभाव में है ही नहीं; वह तो निराकुल आनन्दकन्द प्रभु है। ऐसे आत्मा की जो अनुभूति... आहा...हा... ! ऐसे आत्मा का जो अनुभव.... वस्तु त्रिकाली सामान्य है परन्तु उस ध्रुव का अनुभव पर्याय में (होता है)। वह पर्याय में (जो) अनुभव (होता) है, उसको यहाँ 'अनुभूति' कहते हैं। द्रव्य में अनुभूति नहीं होती (क्यों कि) द्रव्य ध्रुव है, वह एकरूप त्रिकाल है। उसके सन्मुख होने पर, राग और पर्याय और विकार से विमुख होने पर और स्वभावसन्मुख होने पर उसका जो अनुभव होता है, वह 'शुद्धनय' है। शुद्धनय अर्थात् वास्तविक नय वह है, यथार्थ दृष्टि वह है। आ...हा...हा... ! **और वह अनुभूति आत्मा ही है;...** आ...हा... हा... ! राग और पुण्य–पाप का अनुभव, वह तो अनात्मा है; वह आत्मा का अनुभव नहीं। आहा...हा... !

यह अनन्त काल में स्वर्ग में अनन्त बार गया। नौवें ग्रैवेयक... ग्रीवा अर्थात् ग्रैवेयक, यह चौदह ब्रह्माण्ड है, वह पुरुष के आकार है। बाद में खाली हिस्सा आकाश (है) परन्तु जीव–जड़ से भरा हुआ (यह) चौदह राजू लोक असंख्य योजन में है, वह पुरुष के आकार है – यह चौदह ब्रह्माण्ड। उसकी ग्रीवा अर्थात् यह 'डोक' ! ग्रीवा के स्थान पर देव के विमान हैं, जिसे ग्रैवेयक कहते हैं। वह ग्रैवेयक में भी क्रियाकाण्ड करके, महाव्रत आदि पालकर, अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में अनन्त–अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये हैं। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त भव किये हैं। आहा...हा... ! किन्तु आत्मज्ञान क्या चीज है ? उस तरफ इसने ध्यान नहीं दिया। उसकी गरज नहीं की। बात आये तब 'वह सूक्ष्म... यह सूक्ष्म है... वह अपने लिए नहीं' – ऐसा करके बात निकाल दी हैं !

प्रभु ! यहाँ कहते हैं कि **वह अनुभूति आत्मा ही है;...** आत्मा 'ही' है – ऐसा लिया। चन्दुभाई ! आत्मा (है, ऐसा) नहीं; आत्मा 'ही' है। अर्थात् ? भगवान आत्मा जो अतीन्द्रिय आनन्द और निश्चय शुद्ध स्वभाव है, उसका अनुभव होना, उसके सन्मुख होकर अनुभव होना, वह राग और विकार नहीं; वह निर्विकारीदशा है, सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, अनुभव है, वह आत्मा की पर्याय है, उसे यहाँ 'आत्मा' कहा गया है। आहा...हा...हा... ! है ? अन्दर पृष्ठ में तो है, पृष्ठ में तो है (परन्तु) आत्मा में नहीं।

आहा...हा...!

वह अनुभूति आत्मा ही है। **इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है।** अन्तर सम्यक् श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को देखने पर, परतरफ का झुकाव छोड़कर, अन्तर्मुख देखने पर आत्मा एकरूप ही प्रकाशमान है। उसमें भेद नहीं, विकार नहीं, पर्याय का भेद भी उसमें नहीं। सूक्ष्म बात है भाई! आ...हा...हा...! ऐसा जो आत्मा, (वह) एक ही प्रकाशमान है। **एक ही** प्रकाशमान है – ऐसा कहा है। पर्याय का भेद भी वहाँ प्रकाशमान नहीं है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! सूक्ष्म बात है। अनन्त काल से इसको पकड़ने की दरकार की (नहीं)। भाषा कैसी है? **आत्मा एक ही प्रकाशमान है।** गुण–गुणी का भेद (भी) नहीं, राग नहीं, विकल्प नहीं; एकरूप चैतन्यस्वरूप (पर) अन्तरदृष्टि डालने पर अकेला आत्मा ही लक्ष्य में – अनुभव में आता है, उसे शुद्धनय कहो, ...है तो अनुभूति, अर्थात् कि त्रिकाली चीज का अनुभव, अर्थात् कि अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव। वह अनुभव है, वह पर्याय है। पर्याय अर्थात् कि द्रव्य की वर्तमान दशा है। त्रिकाली (द्रव्य) वह नहीं। वह वर्तमान दशा होने पर भी, त्रिकाल के अवलम्बन से जो निर्मल अनुभूति हुई, उस पर्याय को आत्मा भी कहा है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। एक ही प्रकाशमान है। शुद्धनय कहो, सम्यग्ज्ञान का शुद्धनय कहो, अनुभूति कहो, आत्मा की अनुभूति कहो या आत्मा कहो, एक ही है। तीनों बातें एक ही हैं; अलग नहीं है। आहा...हा...हा...!

राग से भिन्न पड़ने पर, प्रभु! अनन्त (आत्मा) मुक्ति में गये हैं। अनन्त आत्माएँ मुक्तदशा में पधारे हैं। परमात्मा की वाणी में सिद्धान्त में एक लेख है कि 6 माह और 8 समय में 608 (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं। छह महीने और आठ समय में! इस अढ़ाई द्वीप के अन्दर मनुष्य हैं। बाकी (अढ़ाई द्वीप के बाहर) असंख्य द्वीप, समुद्र तो पशुओं से भरा है, तिर्यंच! अढ़ाई द्वीप है, उसमें ही मनुष्य है। उसके सिवाय जो असंख्य द्वीप–समुद्र है, उसमें अकेले तिर्यंच – पशु, सिंह, बाघ, समुद्र में मछली और मगरमच्छ भरे हुए हैं। मनुष्य तो केवल इस अढ़ाईद्वीप के अन्दर है – 45 लाख योजन के अन्दर! उसमें से भी 6 महीने और 8 समय में 608 (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं। आ...हा...हा...हा...! अभी यहाँ से भले मुक्ति नहीं, भरत-ऐरावत (में से) (परन्तु) महाविदेह में भगवान विराजमान हैं, वहाँ

से भी 6 महीना और 8 समय में 608 (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं। अभी भी प्राप्त करते हैं। आ...हा...हा...!

वह यहाँ कहते हैं, **वह अनुभूति आत्मा ही है। इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है।** उसको **(शुद्धनय कहो या आत्मा की अनुभूति कहो या आत्मा कहो – एक ही है, अलग नहीं) यहाँ शिष्य पूछता है...** अब शिष्य का प्रश्न है कि **जैसा ऊपर कहा है, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?** प्रभु! तुम यह बात करते हो परन्तु यह सब दिखायी देता है – राग, द्वेष, शरीर, कर्म सभी का सम्बन्ध दिखायी देता है। वह (सब) है और तुम यह बात ऐसी करते हो? तो उसका अनुभव किस प्रकार हो (सकता है)? इसमें बाहर की चीज नहीं? राग, द्वेष, पुण्य, पाप सब भरे हैं, कर्म का सम्बन्ध है। (उस कारण ऐसा पूछता है कि) **जैसा ऊपर कहा वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?** यह सब पड़ा है न? आहा...हा...! यह अन्दर पुण्य–पाप की सब होली जल रही है न? वह विद्यमान वस्तु तुम कहते हो कि उसका अनुभव कर... अनुभव कर... अनुभव कर! आ...हा...हा...! ...लालजी! बात ऐसी है, भगवान! यहाँ तो ऐसी बात है! आहा...हा...! यह दिखायी देता (है) सब–राग दिखे, पुण्य दिखे, पाप दिखे और तुम कहते हो कि ऊपर (कहा) ऐसा आत्मा का अनुभव करना, तो यह किस प्रकार है? उसका होना कैसे बनता है? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया?

यह समाधान... उसका समाधान सन्तों–वीतरागी मुनि, परमात्मा कर रहे हैं। तीन लोक के नाथ के मुख में से निकली हुई वाणी, 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' तीन लोक के नाथ परमात्मा! उनकी ॐ ध्वनि होती है। ऐसी भाषा नहीं होती, उनके होठ हिलते नहीं, कण्ठ कम्पित नहीं होता, जीभ हिलती नहीं और पूरे शरीर में से ॐ ध्वनि उठती है। 'ॐ' ऐसी आवाज उठती है। वह 'ॐ' कार धुनी सुनी अर्थ गणधर विचारे।' सन्तों के टोलों के गणधर (अर्थात्) गण के धारक – मुखिया उसका विचार करते हैं और उसमें से आगम रचे। 'ॐकार धुनी सुनी अर्थ गणधर विचारे, वे आगम रचि भविक जीव संशय निवारे।' उन्होंने आगम की रचना की और भव्य प्राणी – जो योग्य प्राणी हैं, वे सुनकर अपना संशय निवारकर – मिथ्यात्व निवारकर अनुभव करते हैं, ऐसी (यह) बात है, कहते

हैं। यह 'बनारसी विलास' में है, यह शब्द कहे वह। बनारसी विलास पुस्तक है न? (यहाँ तो) बहुत लाखों पुस्तकें देखी हैं। यह एक एक! धन्धा ही पूरी जिन्दगी यह किया है। (मात्र) पाँच वर्ष दुकान चलाई थी। उस दुकान पर भी वाँचता था मैं यह–शास्त्र! आहा...हा...! **यह वस्तु तो अन्दर से आई है**!! आहा...हा...!

(यहाँ) कहते हैं कि एक बार सुन तो सही, प्रभु! यह बन्ध और राग दिखायी देता है, प्रभु! और तुम कहते हो कि इसका (स्वभाव का) अनुभव होता है; और राग आदि का अनुभव नहीं होता, तुम यह क्या कहते हो? शिष्य का यह प्रश्न है। है? **जैसा ऊपर कहा...** (अर्थात्) अनुभूति, अभेद और निश्चय (स्वरूप); **वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?** ऐसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती? क्योंकि यह सब पड़ा है न? बात समझ में आयी? आहा...हा...! असंख्य प्रकार के पुण्यपरिणाम, पापपरिणाम, असंख्य प्रकार के पुण्यभाव हैं, पाप भी असंख्य प्रकार का है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के असंख्य प्रकार हैं; पाप परिणाम में हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह भी असंख्य प्रकार के हैं। अतः ऐसे असंख्य प्रकार के पुण्य और पाप (के परिणाम की) मौजूदगी दिखायी देती है, उसमें तुम कहते हो कि इनसे रहित अनुभव करना! यह विद्यमान चीज है, इससे रहित मुझे अनुभव करना, ये क्या कहते हो आप? झवेरचन्दभाई! आ...हा...हा...!

उसका समाधान यह है – बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ है... आ...हा...हा...! क्या कहा? भगवन्त! यह राग और पुण्य–पाप का सम्बन्ध जो दिखायी देता है, वह असत्य है – झूठा है; आत्मा में वह नहीं। आहा...हा...! कहा? क्या कहा? **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव झूठे है...** राग आदि है, तथापि वे कोई स्वरूप में नहीं, वह तो कल्पना का झूठा भाव पर्याय में खड़ा किया है। आहा...हा...! तुम कहते हो कि अनुभूति आत्मा की करना, परन्तु यह सब दिखायी देता है, इसका क्या करना? (तो कहते हैं कि) ये दिखता है, वह सब झूठा है और अन्दर त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान विराजता है, वह इनसे भिन्न है।

पहले से कहा कि **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव** (अर्थात्) पाँच कहे न ऊपर (पहले)? अबद्ध के सामने बद्ध, अस्पृष्ट के सामने स्पृष्ट, अनन्य के सामने अन्य-अन्य, नियत के सामने व्यवहार, अविशेष के सामने विशेष, असंयुक्त के सामने संयुक्त, ये पाँच भाव कहे।

आहा...हा...! उसमें आत्मा की अनुभूति कैसे हो? प्रभु! **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव** झूठे हैं। आ...हा...हा...! त्रिकाली चीज में वे नहीं हैं। एक समय की पर्याय में वे दिखते हैं, वे झूठे हैं। 'झूठ' शब्द से (आशय)? है तो सही, किन्तु वस्तु में नहीं; इसलिए वह झूठा है। आहा...हा...हा...! ऐसी बात है।

पर्याय में है, पर्याय में नहीं – ऐसा नहीं। नहीं हो तब... तो अनुभव होना चाहिए। आनन्द का वेदन होना चाहिए!! भगवान तो आनन्दस्वरूप है, उसकी पर्याय में भी यदि आनन्द हो तो यह दुःख का अनुभव कहाँ से आया? यह दुःख क्या है यह? यह सेठाई और राजाई और देव और ये सब दुःखी प्राणी हैं। राग और द्वेष में व्याकुलता में घबरा गये हैं। उसकी इसे खबर नहीं। वह दुःख है, दुःख नहीं – ऐसा नहीं परन्तु वह अभूतार्थ है। (अभूतार्थ) अर्थात्? हमेशा रहनेवाला नहीं। हमेशा रहनेवाला तत्त्व अन्दर भिन्न है। आहा...हा...! भभूतमलजी यह सब पैसे से भिन्न बात है। आहा...हा...! क्या कहा समझे? ऊपर कहे वे **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव** झूठे है, हमेशा टिके – ऐसे नहीं। एक समय की अवस्था है, ध्रुव त्रिकाली इनसे भिन्न है। आ...हा...हा...!

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु! ध्रुव, नित्य, सामान्य, एकरूप वह बद्धस्पृष्ट भाव से भिन्न है। बद्धस्पृष्ट भाव है, वह एक समय का है और त्रिकाल वस्तु है, वह अन्दर भिन्न पड़ी है। आहा...हा...! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! आहा... हा...! भाव तो जो है, वह है। यह तुम्हारी गाथा लिखी हुई है कि यह चौदहवीं (गाथा) वाँचना, आहा...हा...!

बद्धस्पृष्टत्व आदि झूठे हैं; **इसलिए अनुभूति हो सकती है।** क्या कहा यह? पुण्य और पाप के भाव, दया, दान के विकल्प, एक समय की अवस्था होने से, हमेशा रहती नहीं होने से, उसको भिन्न करके अनुभव हो सकता है क्योंकि वह हमेशा रहनेवाली चीज नहीं। पुण्य और पाप, दया और दान आदि के भेद जो व्यवहार है, वह कायम रहनेवाली चीज नहीं। वह एक समय की है। एक समय में (एक) रहे, दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी, परन्तु इसकी अवधि तो एक समय की है और भगवान अन्दर इससे भिन्न त्रिकाल पड़ा है। आ...हा...हा...हा...! ऐसी बात है। अभी अफ्रीका में और इस नैरोबी में यह बात आयी। आहा...हा...!

कहते हैं कि **बद्धस्पृष्टत्व आदि** झूठे **होने से वह अनुभूति हो सकती है। इस बात को दृष्टान्त से प्रकट करते हैं –** इसका दृष्टान्त देते हैं। (शिष्य को) समझ में नहीं आया कि **बद्धस्पृष्टत्व,** वह झूठे है और वस्तु त्रिकाल सत्य है, इसका अर्थ क्या? हम इसको समझ सकते नहीं – तो उसको दृष्टान्त से समझाते हैं। **इस बात को दृष्टान्त से प्रकट करते हैं – जैसे कमलिनी पत्र...** कमलिनी की यह बेल होती है न? पानी में कमल (होता है न?) उसका पत्र जल में डूबा हुआ दिखता है। कमल है, वह पानी में डूबा हुआ दिखता है। है? तो भी **उसका जल से स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर...** आहा...हा...! पानी में वह कमल रहता है। बेल होती है न जल में? कमल की बेल (होती है) उसमें कमल पकता है। वह पानी में दिखता है। (यहाँ) कहते हैं कि पानी में स्पर्शित होनेरूप दिखायी देता है। **जल से स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना भूतार्थ है...** (कमल को) जल का सम्बन्ध एक समय का है, वह भूतार्थ है। भूतार्थ अर्थात् एक समय में है। बिल्कुल (सम्बन्ध) ही नहीं – ऐसा नहीं, परन्तु एक समय की इसकी अवधि है। आहा...हा...!

सत्यार्थ है, तो भी... एक समय में राग और द्वेष और संसार.... त्रिकाली भगवान आत्मा में, उसकी दशा में एक समय में यह सब दिखायी देता है फिर भी, आहा...! तथापि, वह होने पर भी, पर्याय में वह भाव होने पर भी, आहा...हा...! है? **जल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य** ऐसा **कमलिनी–पत्र के स्वभाव के समीप जाकर...** यदि देखें... कमल का स्वभाव देखें तो वह पानी से स्पर्शित नहीं। कमल को पानी से ऊपर करो तो पानी बिल्कुल उसके स्पर्शित नहीं। कमल के पत्र के रोंहे का रूखापन ऐसा है कि रोंहे में वह पानी छूता नहीं। उस कमल के पत्र को जहाँ ऊँचा किया तो पानी उसको किंचित्मात्र भी स्पर्शा नहीं। आ...हा...हा...! एक अपेक्षा से डूबा हुआ दिखता है, (वह) एक समय की बात बराबर है परन्तु उसको बाहर निकाल कर देखो तो कमल की रूखी रूवाली को वह पानी छूता नहीं, आ...हा...हा...! यह तो अभी दृष्टान्त है, हों! कमल... कमल...! उसकी रूवाली रूखी होती है। (कमल) पानी में पड़ा (हो) तथापि उस रूवाली को पानी छूता नहीं। ऊँचा करो तब अच्छा साफ निकलता है। पानी पानी में रह जाता है और कमल भिन्न अकेला पृथक् हो जाता है। आहा...हा...हा...!

तथापि जल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने ऐसा **योग्य कमलिनी पत्र के स्वभाव के समीप जाकर...** आहा...हा...! कमल के पत्र का स्वभाव देखकर **अनुभव करने पर...** समीप जाकर क्या कहा यह? कि पानी में (स्पर्शित हुआ है ऐसी नजर से) देखने पर भले ही उसको पानी का स्पर्श है, परन्तु कमल के समीप (जाकर) देखने पर, पानी को नहीं देखने पर, कमल के (स्वभाव के) समीप (जाकर) देखने पर, कमल का रूखापन और पानी का नहीं छूना – ऐसा देखने पर, आ...हा...हा...! **जल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य कमलिनी पत्र के स्वभाव के समीप जाकर...** यह क्या कहा? कि वह कमलिनी पानी के अन्दर दिखती है, वह वर्तमान में भले ही पानी में है परन्तु तुम्हारी नजर पानी पर है (इसलिए ऐसा दिखायी देता है) किन्तु पत्र के समीप (जाकर) नजर करो। कमल के पत्र के समीप जाकर अर्थात् जल के लक्ष्य को छोड़कर, कमल का स्वभाव है, उसके समीप जाकर, उसके स्वभाव के समीप जाकर, आ...हा...हा...! पानी से स्पर्शित है, वह समीपपना (स्वभावपना) नहीं; वह तो एक समय का भाव अन्दर पड़ा है परन्तु कमलिनी का स्वभाव है, उसके समीप जाकर नजर करो... आहा...हा...! तो **जल से स्पर्शित होना...** झूठा है। है? **जल से स्पर्शित होना अभूतार्थ है...**झूठा है । उसको जल स्पर्शा ही नहीं। आ...हा...हा...हा...!

यद्यपि यहाँ तो जल को स्पर्श किया है (ऐसा कहा) वह तो निमित्त से कथन है। बाकी निश्चय से तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्शता नहीं। क्या कहा यह? 'समयसार' की तीसरी गाथा में (ऐसा कहा है कि) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुंबता नहीं, कभी स्पर्शता नहीं, क्योंकि एक द्रव्य (और) दूसरे द्रव्य के बीच अत्यन्त अभाव है। अपना स्वभाव (है), उसमें पर का अभाव है, अभाव के कारण एक–दूसरे को स्पर्शते नहीं। वह हरेक द्रव्य का वैसा ही स्वभाव है परन्तु यहाँ व्यवहार से एक बात की कि पानी में डूबा हुआ है – ऐसा देखने पर स्पर्श है। स्पर्श अर्थात् डूबा हुआ है इतना! वास्तव में तो वह कमल पानी को स्पर्शता ही नहीं। पण्डितजी! किन्तु पानी का ऐसा संयोग देखकर तुझे ऐसा लगे कि यह पानी में डूबा हुआ है, तो उस अपेक्षा से भले व्यवहार हो, तथापि कमल को देखने पर (कमलिनी पत्र के) स्वभाव को देखने पर, कमल के समीप जाकर (देखने पर) पानी के समीप की

(संयोग की) दृष्टि छोड़कर... आ...हा...हा...! है? वह **अभूतार्थ है...** झूठा है – पानी का स्पर्श (झूठा है)। कमल के स्वभाव को देखने पर पानी का स्पर्श, वह झूठा है। वह दृष्टान्त हुआ। समझ में आया? अभी यह दृष्टान्त ही सूक्ष्म है। पहले व्यवहार से स्पर्शित होना कहा था। एक तरफ ऐसा कहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्शता नहीं और यहाँ कहा कि जल को कमल ने स्पर्शित किया है। (उसका) इतना अर्थ (है) कि उसमें डूबा हुआ दिखता है, अन्दर पड़ा (है), उस अपेक्षा से वह स्पर्शित होने योग्य है – ऐसा कहा गया है। बाकी तो कमल पानी को स्पर्शा नहीं । आ...हा...हा...! वह कमल को देखने पर (अर्थात्) कमल के स्वभाव के समीप नजर करने पर; दूर नजर नहीं करने पर, पानी की तरफ नजर न करने पर, कमल के स्वभाव के समीप की नजर करने पर उस कमल का स्वभाव पानी को स्पर्शा नहीं। उसने पानी को स्पर्शा नहीं; पानी का स्पर्श, वह अभूतार्थ है और झूठा है।

इसी प्रकार... यह दृष्टान्त हुआ। अब आत्मा में उतारते हैं। आहा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। **अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का...** अनादि काल से कर्म के संयोग में रहा (होने पर भी) कर्म को स्पर्श नहीं किया। आत्मा ने कर्म को स्पर्श नहीं किया, कर्म ने इसे (आत्मा को) स्पर्श नहीं किया परन्तु उनके संयोग में रहा है। है (पाठ में)? **अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का पुद्गल कर्मों से बँधने–स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर...** (अर्थात्) कर्म के निमित्त तरफ के लक्ष्य से देखने पर, राग–द्वेष का अनुभव करने पर उन कर्मों का सम्बन्ध है – ऐसा व्यवहार से भूतार्थ है। व्यवहार रूप से हैं परन्तु आत्मा का स्वभाव देखने पर... ऐसा कहते हैं, देखो! **पुद्गल कर्मों से बँधने स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है – सत्यार्थ है, तथापि...** वह कमल, पानी को स्पर्शा नहीं; इस प्रकार देखने पर.... इस प्रकार कर्म को और राग को स्पर्शा नहीं – ऐसे आत्मा के स्वभाव को देखने पर (ऐसा कहना है)।

सम्यग्दृष्टि जीव – सम्यग्ज्ञानी जीव – धर्म की पहली श्रेणीवाला जीव, धर्म की पहली सीढ़ीवाला जीव, राग का लक्ष्य छोड़कर आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर... है? **आत्मस्वभाव के समीप जाकर...** ऐसा शब्द है। (पहले) राग की समीपता मानी थी।

राग और द्वेष और पुण्य और दया, दान, व्रत के परिणाम (का) स्पर्श है – ऐसा व्यवहार से माना था परन्तु उसकी समीपता छोड़कर (और) आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर (देखने पर) आ...हा...हा...हा...! अर्थात् क्या कहते हैं? कि राग और द्वेष तरफ की जो तेरी दृष्टि है – पर्यायबुद्धि है, उसको छोड़कर, समीप... आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर (देख)! दूर जाकर जो तू राग को देखता (था) आत्मा के स्वभाव से दूर जाकर राग को देखता (था), अब उसे दूर छोड़कर आत्मा के समीप में आ जा। आ...हा...हा...!

सूक्ष्म बात है किन्तु अपूर्व बात है, बापू! इसने कभी की नहीं। आहा...हा...! सुनी है परन्तु (उसे) रुचि नहीं। सुनी है अनन्त बार। समवसरण में अनन्त बार सुना है परन्तु उसका जो भाव है, वह इसको रुचा नहीं। अन्दर क्या चीज है? (उसकी खबर नहीं) क्योंकि उसका अनुभव नहीं। अनुभव तो अनादि से राग और द्वेष का है, पुण्य और पाप का अनुभव है परन्तु (यहाँ तो) कहते हैं कि अब आत्मा इसका लक्ष्य छोड़कर, आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर.... जो राग का लक्ष्य था, तब आत्मा के स्वभाव से दूर था। राग का अनुभव करने पर आत्मा के समीप से (स्वभाव से) दूर था, उस राग का लक्ष्य छोड़कर आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर... आहा...हा...हा...! है न इसमें!

ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाकर... आहा...हा...हा...! भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। शुद्ध आनन्दघन ज्ञान के नूर का पूर है। आनन्द है – अतीन्द्रिय आनन्द से भरा हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस भरा हुआ भगवान है। उसके समीप में जाकर, राग की आकुलता का लक्ष्य छोड़कर, अनाकुल ऐसा जो आनन्दकन्द प्रभु (है), उसके समीप जाकर **अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता...** झूठी है। आत्मा के स्वभाव को देखने पर राग का सम्बन्ध, वह सब झूठा है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

यह राग का सम्बन्ध देखने पर राग है परन्तु स्वभाव का सम्बन्ध देखने पर – स्वभाव के समीप दृष्टि करने पर.... वह कोई बात नहीं। यह तो भाव की सूक्ष्म बात है बापू! आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान है। उसको... अन्दर पुण्य और पाप के विकल्पों के लक्ष्य से छूटकर, इसका स्वभाव है, उसके समीप में अर्थात् वहाँ दृष्टि करने पर ये राग आदि सभी झूठे हैं। ये राग आदि स्वरूप में है नहीं। पुण्य और पाप के दोनों परिणामों (की)

जाति, वह आत्मा की जाति है नहीं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

यह चौदहवीं गाथा सम्यग्दर्शन की है। सम्यग्दर्शन की गाथा है यह। पहला धर्म... पहला धर्म! पहला शुरुआत का धर्म! भले अभी चक्रवर्ती का राज हो, गृहस्थाश्रम में पड़ा हो, फिर भी उसको सम्यग्दर्शन हो सकता है परन्तु इस प्रकार। राग का – पुण्य का परिणाम होने पर भी, उसकी विद्यमान पर्यायदृष्टि है, उसके होने पर भी, उसका लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव (के) समीप जाकर, राग से दूर होकर, स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वह राग और पुण्य–पाप वह झूठे हैं; वे आत्मा में ही नहीं। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है भाई!

सम्यग्दर्शन यह कोई अलौकिक चीज है। सम्यग्दर्शन हुआ, उसका तो अल्प काल में मोक्ष होगा ही। दूज हुई उसको पूनम होगी ही। ऐसे सम्यग्दर्शन हुआ, उसको अल्प काल में सिद्धपद हुए बिना रहेगा ही नहीं। इसके बिना चाहे जितना करे, एक के बिना बिन्दी (है)। पुण्य और पाप के परिणाम लाख और करोड़ और अनन्त बार किये, (तथापि) उसके फल में यह चार गति (में) यह सब भटकना है। आहा...हा...! भले फिर बाहर की सामग्री अरबों रुपयों की दिखे। अरबों का मकान–महल दिखे – वह सब धूल-धाणी है!! यह इसके तरफ का राग है, वह भी धूल-धाणी है – ऐसा कहते हैं। वह चीज तो ठीक, वह (मकान-महल) तो बाहर (रहे), उसकी तो बात है भी नहीं। (यहाँ तो) अन्तर में राग-द्वेष होते हैं, उसकी पर्याय (पर्याय) रूप से देखें तो है। अवस्था रूप से देखें और द्रव्य का लक्ष्य न करें तो वह है। वह अनादि से संसार है। भटकने का अनादि संसार है। संसार ही नहीं – ऐसा नहीं। 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या' – ऐसा जो कहते हैं, ऐसा नहीं। यह आत्मा सत्य है और राग आदि है ही नहीं – ऐसा नहीं। 'है'... तथापि एक समय की मर्यादावाले हैं। इनकी दृष्टि छोड़कर, आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टत्व झूठा है। राग आदि का सम्बन्ध और भेद – यह गुण-गुणी का भेद भी झूठा है। आहा...हा...!

चौदहवीं गाथा वह सम्यग्दर्शन की गाथा है! अपूर्व बात है! सूक्ष्म है परन्तु अपूर्व है! (यह) सुनने को मिलना भी भाग्यशाली को मिलता है! आ...हा...हा...! और अन्दर से इसकी 'हाँ' पड़ना, (वह) तो अलौकिक पुरुषार्थ है और हाँ पड़कर बाद में दशा

होना...। राग बिना का अन्दर मेरा स्वभाव है, उसकी 'हाँ' पड़कर बाद में अन्दर जाए तब हालत हो जाए! 'हाँ' की हालत हो जाए, वहाँ अनुभव हो जाए!! समझ में आया। 'समझ में आया कुछ' वह तो विश्राम वाक्य है। सूक्ष्म बात है भाई! एकदम पकड़ में आये ऐसी नहीं। अनन्त काल से इसको सुना नहीं – प्रेम से सुना नहीं। जैसा जगत का प्रेम (है ऐसा प्रेम यहाँ नहीं) आहा...हा...! इसकी स्त्री का और पुत्र का और पैसे का और मकान का प्रेम (है), उसमें दो-पाँच करोड़ का मकान हो और उसमें दो-पाँच अरब की पूँजी हो और इसके बालक बहुत सुन्दर और (फिर) देखो इसका पागलपन! आहा...हा...!

परमात्मप्रकाश में कहते हैं – 'धर्मी जीव सूक्ष्म बात करे, वह पागल को पागल जैसे लगे।' ऐसा पाठ है। पागल जीवों को पागल जैसी लगे। यह क्या कहते हैं यह? समझ में आया? 'परमात्मप्रकाश' में है कि जब (धर्मी जीव) सूक्ष्म बात करे और सत्य बात करे, तब सुननेवाले को, पगला है (इसलिए) इसको पागलपन लगता है।.... यह क्या? पागल जैसी बातें करता है? समझ में आता है?

एक पद्मनन्दिपंचविंशति ग्रन्थ है – शास्त्र है। उसमें अधिकार 26 है परन्तु नाम (पंचविंशति) है। 'पद्मनन्दिपंचविंशति' है, होगी यहाँ। उसमें ब्रह्मचर्य का एक लेख दिया। सन्तों ने, मुनियों ने ब्रह्मचर्य का लेख दिया। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चरना, उसका नाम ब्रह्मचर्य। शरीर से ब्रह्मचर्य पालन, वह ब्रह्मचर्य नहीं। स्त्री का संग आदि किया नहीं; इसलिए ब्रह्मचारी, वह ब्रह्मचारी नहीं। बहुत सूक्ष्म बात की है कि शरीर से तूने संग नहीं किया, तो वह तो शरीर स्वभाव था तो संग नहीं हुआ। तूने माना कि मैंने विषय सेवन किया नहीं परन्तु वह तो शरीर का स्वभाव स्पर्शने का नहीं था, इसलिए स्पर्शा नहीं। बाद में (कहते हैं कि) 'ब्रह्मचर्य' किसको कहना? ब्रह्म अर्थात् आत्मा – पूर्णानन्द का नाथ, उसमें चरना अर्थात् रमना, उसको ब्रह्मचर्य कहते हैं। इस ब्रह्मचर्य की व्याख्या बहुत की, बहुत गाथाएँ हैं।

मुझे तो दूसरा कहना है कि इस ब्रह्मचर्य की व्याख्या की और बाद में पद्मनन्दी आचार्य मुनिराज ऐसा बोले, 'हे युवाओं! मेरी बात तुम्हें न रुचती हो...' मेरी ब्रह्मचर्य की बात जो मैं कहता हूँ – ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें रमना वह ब्रह्मचर्य। अकेला विषय

सेवन, वह तो पाप (है) परन्तु विषय सेवन नहीं करे, शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह भी पुण्य (है); वह धर्म नहीं। आहा...हा...! गजब बात है! तब (कहते हैं) ब्रह्मचर्य किसको कहना? कि आत्मा आनन्दस्वरूप ब्रह्म है, उसमें चरना–रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य। यह सूक्ष्म बात करके बाद में मुनिराज ने ऐसा कहा, दिगम्बर मुनि थे। उन्होंने ऐसा कहा कि 'हे युवाओं! तुमको यह विषय का रस हो और मैं ऐसी बात करूँ, वह तुमको कदाचित् नहीं रुचे (तो) प्रभु! माफ करना!' – ऐसा कहा है। आहा...हा...! जेठालालभाई! मुनिराज ऐसा कहते हैं कि 'भाई! माफ करना। मेरे पास से तू क्या लेना चाहता है? मेरे पास जो है वह तू ले। दूसरा (तो) मेरे पास है नहीं।'

(कहते हैं कि) ब्रह्मचर्य की बात करने पर (तुमको रुचिकर नहीं लगे क्योंकि) तुम्हारे युवा अवस्था (है) पैसा कोई पाँच–पच्चीस करोड़ हो और स्त्री अनुकूल हो और उसका रस चढ़ गया हो और हमारे ब्रह्मचर्य की बात तुमको अच्छी न लगे (तो) मुनिराज ऐसा कहते हैं – 'पद्मनन्दी आचार्य ऐसा कहते हैं, 'प्रभु! माफ करना! मेरे पास से दूसरी क्या आशा रखेगा?' आ...हा...हा...!

ऐसे यहाँ आचार्य कहते हैं कि 'मैं यह सूक्ष्म बात करता हूँ' आत्मा को स्पर्श करने की; राग आदि अभूतार्थ है – झूठा है और आत्मा के समीप जाने पर आत्मा का अनुभव (हो), वह सत्य है। यह बात तुझे सूक्ष्म पड़े और पकड़ में नहीं आये तो मेरे पास क्या आशा रखेगा? माफ करना प्रभु! (मैं) यह सूक्ष्म कहता हूँ – ऐसा सुनना हो तो सुनना।' आहा...हा...! कहो! कमलभाई! मुनिराज ऐसा कहते हैं। सच्चे सन्त कहते हैं। जंगल में रहनेवाले (ऐसा कहते हैं कि) हम सूक्ष्म बात करते हैं, प्रभु! तुमको न रुचे तो माफ करना। मेरे पास से दूसरी क्या आशा रखेगा? हमारे पास दूसरा क्या है? आ...हा...हा...! हमारे पास तो आत्मा की बात है, प्रभु! इस बात को सुनते हुए तुझे न रुचे तो माफ करना, प्रभु! आहा... हा...! प्रभु! तुझे सूक्ष्म लगे, प्रभु! तेरे अनुभव में यह बात जल्दी नहीं आये.... यह हम बात करते हैं, उस बात में तुझे जल्दी से समझ नहीं पड़े; इसलिए तुझे अरुचिकर लगे (तो) माफ करना, प्रभु! मार्ग तो यह है, वह कहते हैं। बाकी दूसरा क्या कहें, प्रभु! नाथ।

मुमुक्षु : आचार्य माफी माँगते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पद्मनन्दी आचार्य माफी माँगते हैं। यहाँ पुस्तक नहीं। है? यहाँ होगी 'पद्मनन्दिपंचविंशति'... 'पद्मनन्दिपंचविंशति' पुस्तक है, उसमें अन्तिम 26वाँ अधिकार है।

यहाँ तो लाखों पुस्तकें देखी है। यहाँ तो पूरी जिन्दगी धन्धा (ही यह किया है)। पाँच वर्ष व्यापार (किया), सब छोड़ (दिया), कुछ किया नहीं। स्त्री का संग किया नहीं। विवाह का प्रसंग आया था, (मैंने) मना किया कि 'मुझको तो ब्रह्मचारी रहना है?' इसलिए यहाँ तो पूरा ही धन्धा यह किया है। पाँच वर्ष व्यापार में थोड़ा रूका, वहाँ भी मैं तो शास्त्र ही पढ़ता। 19-20 वर्ष की उम्र से। किन्तु बात दूसरी निकली, बापू...! यह 'समयसार' जब हाथ में आया....

मुमुक्षु : हमारा भाग्य बाकी था न!

पूज्य गुरुदेवश्री : आ...हा...हा...हा...! सच्ची बात है। यह (जहाँ) आया (वहाँ) अन्दर में पूरा फेरफार... फेरफार। (मैने बड़े भाई से कहा) 'भाई! मैं इसमें नहीं रह सकता। यह स्थिति कोई दूसरी है।' आहा...हा...!

यहाँ महाराज प्रभु कहते हैं... यह तो 'कुन्दकुन्दाचार्य' की गाथा है। 'अमृतचन्द्राचार्य' एक हजार वर्ष पहले हुए, उनकी यह टीका है। ये अमृतचन्द्राचार्य सूक्ष्म बात करते हैं कि बँधा हुआ भाव... आ...हा...हा..! राग आदि है, वह दिखायी देता है, इतना सत्य है परन्तु प्रभु! जैसे कमल के स्वभाव को देखने पर (कमल) पानी के स्पर्शता नहीं, वैसे ही भगवान का स्वभाव देखने पर वह कर्म को और राग को स्पर्शता नहीं। आहा...हा...! 'प्रभु! ऐसी बात तुझे सूक्ष्म लगे (तो) प्रभु! माफ करना। और क्या हो? हमारे पास से दूसरा क्या लेना चाहता है? तुम्हें ठीक लगे ऐसा माँगो (तो) ऐसा तो हमारे पास है नहीं।' आहा...हा...!

यहाँ तो यह कहते हैं, आ...हा...हा...! पुद्गल से जरा भी नहीं स्पर्शित होने योग्य, राग को नहीं स्पर्शने योग्य ऐसा अन्दर भगवान आत्मा का स्वभाव है। चैतन्यमूर्ति परमात्मा! चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर भरा है पूरा। तेरी नजर की आलसे रे.. स्वामी नारायण में ऐसा कहते हैं –

'मारी नजर ने आलसे रे, मैं निरख्या न नयणे हरि,

मारा नयणने आलसे रे, नीरख्या न नयणे हरि॥'

''हरि यह आत्मा! 'पंचाध्यायी' में 'हरि' आत्मा को कहा है। क्यों? कि राग–द्वेष और अज्ञान को हरे, वह हरि। राग–द्वेष और अज्ञान को जला डाले वह हरि।'' ऐसा यह भगवान – हरि! और श्रीमद् ने भी एक पत्र में कहा है कि 'इस जगत् में एक अधिष्ठाता हरि है, उस हरि को मैं इस हृदय में देखता हूँ, अर्थात् यह आत्मा हरि है।' 'श्रीमद् राजचन्द्र।'

यहाँ वह कहते हैं (कि) तेरा नाथ जो हरि है, उसके स्वभाव के समीप जाने पर... बापा! अर...र...र...! अनादि से व्यवहार के राग के समीप तो पड़ा ही है। प्रभु! यह कोई नवीन बात नहीं, यह अपूर्व बात नहीं; पूर्व में अनन्त बार हो गयी है। वह की वह तेरी जाति है, अब एक बार आत्मस्वभाव में समीप जा! राग की मौजूदगी है, उसकी मौजूदगी नहीं, मेरी मौजूदगी है (ऐसा देख)। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता... झूठी है, आ...हा...हा...! यह एक दृष्टान्त दिया – कमल का! पानी को स्पर्शा (है), फिर भी स्पर्शा हुआ नहीं। स्पर्शा हुआ है, वह व्यवहार है; नहीं स्पर्शा, वह निश्चय है। ऐसे आत्मा (की) पर्याय में राग है, वह व्यवहार है। परमार्थ से आत्मा, राग को स्पर्शा भी नहीं, राग को स्पर्शा भी नहीं। आत्मा, राग को स्पर्शा भी नहीं। वह त्रिकाल निरावरण अखण्डानन्द परमात्मस्वरूप है। उसके समीप में जाकर देखने पर से राग आदि तुम्हें झूठ लगेंगे। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

ऐसा उपदेश है यह। हमारे 'सोनगढ़' में तो 45 वर्षों से चलता है परन्तु यहाँ तो अभी पहली बार आये। तुम्हारे लक्ष्मीचन्दभाई, जेठाभाई और तुम्हारी माँग थी न, बापा! आहा...हा...! अरे...! कहाँ कान में पड़े बात, प्रभु! अन्तर के घर की बातें कान में पड़े, वह अमृत की धारा है – ऐसा शास्त्र में लेख है। भगवान की दिव्यध्वनि, वह अमृत की धारा है। कान में मानों अमृत बरस रहा हो – ऐसी वीतराग की वाणी है। आ...हा...हा...! पहले में आता है न? 'समयसार' में पहले गाथाओं में। वीतराग की दिव्यध्वनि छूटती है और इन्द्र सुनते हैं। बाघ और नाग और सिंह (आते हैं)। जिनकी सभा में जंगल से सैकड़ों सिंह, सैंकड़ों नाग

और सैंकड़ों बाघ और 100 इन्द्र आकर सुनते हैं। वह वाणी, अमृतधारा बरसती है – ऐसा शास्त्र में कहा है परन्तु अन्दर में जाए तब अमृतधारा बरसे, यह सच्ची बात है। आहा...हा...! बहुत बात की है। आहा...हा...!

एक दृष्टान्त हुआ। एक अबद्ध का कहा। अबद्धस्पृष्ट का हुआ। पाँच बोल हैं न? अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त – पाँच बोल हैं। उसमें एक बोल की व्याख्या हुई। अब, दूसरे बोल की (व्याख्या है)।

तथा, जैसे मिट्टी का ढक्कन, घड़ा, झारी, रामपात्र इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है... मिट्टी का कमण्डल हो, घड़ा हो, झारी हो, रामपात्र (अर्थात्) यह सकोरा। सकोरे को रामपात्र कहते हैं। सकोरा नहीं आता? मिट्टी का सकोरा। उसको रामपात्र कहते हैं। एक बुढ़िया थी (उसको) 'राम' का नाम ही सुहाता नहीं था। बाद में उसको एक सकोरा बताकर (पूछा) कि यह किसी प्रकार यह 'रामपात्र' बोलती है? (इसलिए पूछा) यह क्या है बा? (तो कहा) वह सकोरा है। 'रामपात्र' बोले तो 'राम' आ जाये। यह शब्द इसे सुहाता नहीं। आ...हा...हा... पण्डितजी! ऐसा बना है, हों! राम– आत्मा। अन्दर रमे सो राम – आत्मा। और 'रामचन्द्रजी' तो मोक्ष पधारे हैं। 'रामचन्द्रजी' तो मोक्ष गये हैं, परमात्मा हो गये – सिद्ध हो गये हैं। उन राम का नाम भी बाई को सुहाता नहीं था; इसलिए (मरते समय) किसी प्रकार राम का नाम इसके (मुख पर) आये (ऐसा विचार कर) यह सकोरा बताया (और पूछा) बा! माँ! यह क्या है? (तो कहा) यह सकोरा है।' रामपात्र बोलने में भी इसको परेशानी आती थी। आहा...हा...! जगत की ऐसी बात है, बापू!

ऐसा यहाँ कहते हैं मिट्टी (को) कमण्डल, घड़ा, झारी आदि पर्याय से देखो तो वह अन्यपना है–पर्याय है। **तथापि सर्वतः अस्खलित (सर्व पर्याय भेदों से किंचित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले ऐसे) मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर....** यह झारी और कमण्डल और घड़े की ये पर्यायें झूठी हैं, वह मिट्टी ही है। मिट्टी... मिट्टी... मिट्टी... मिट्टी... मिट्टी... पर्यायभेद जिसमें नहीं। आ...हा...हा...! पर्यायभेद से देखो तो ये पर्याय है, किन्तु मिट्टी के स्वभाव से देखो तो ये पर्यायभेद नहीं है। आ...हा...हा...! ऐसी बातें है। है? इन रामपात्र आदि पर्यायों से देखने पर वे हैं, तथापि सर्वतः एक 'मिट्टी' देखने पर अर्थात् मिट्टी का एकरूप देखने पर, वे सब पर्यायों के भेद, मिट्टी में नहीं, वे झूठे हैं; अन्दर

मिट्टी तो मिट्टी ही है। आहा...हा...!

मिट्टी के स्वभाव के समीप देखने पर अन्यपना झूठा है। **इसी प्रकार...** यह तो दृष्टान्त हुआ। अब सिद्धान्त। दृष्टान्त, सिद्धान्त के लिए है। दृष्टान्त, दृष्टान्त के लिए नहीं। दृष्टान्त, दृष्टान्त के लिए नहीं, दृष्टान्त सिद्धान्त के लिए है। सत्य समझने में सरल पड़े; इसलिए दृष्टान्त है। लेकिन दृष्टान्त सुनकर वहाँ रुक जाए – ऐसा नहीं। आहा...हा...!

इसी प्रकार आत्मा का, नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर... आ...हा...हा...! क्या कहते हैं? जैसे, मिट्टी में से (बने हुए) झारी और घड़ा देखने पर वह सत्य है। वैसे आत्मा को चार गति (में) देखने पर है, नरक की गति है, एकेन्द्रिय है, वनस्पति है, कीड़ा है, कौआ है (ऐसे) अवतार धारण किये हैं। वह अवतार 'है'। है (अन्दर)? **नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर...** नारकी है, मनुष्य है, देव है, ढोर है – ऐसे पर्यायभेद से देखने पर वह वस्तु है। आ...हा...हा...! **इसी प्रकार आत्मा को, नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर...** आहा...हा...! मैं नारकी हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ, मैं सेठ हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं पण्डित हूँ, उन सभी पर्यायों में (आत्मा है, ऐसा) कहा जाता है। (परन्तु) वस्तुस्वरूप में ये है नहीं। आ...हा...हा...! समझ में आया कुछ? है? **आत्मा का नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर...** वह 'है'। चार गति के भव है। आ...हा...हा...! माँस खाये, शराब पीये, परस्त्री के लम्पटी हैं, अनीति का आचरण करे, वह मरकर नरक में जाते हैं। नरकगति है, वे वहाँ नरक में जाते हैं। नरकगति, गतिरूप से है। आत्मा के रूप में देखे तो वह गति उसमें नहीं, वह तो बाद में आयेगा। समझ में आता है कुछ?

'नारक' आदि कहा न? ऐसे तिर्यंच। सिंह, पशु, बाघ, एकेन्द्रिय, वनस्पति, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय ये सभी जीव हैं। (जो) कषायभाव करते हैं, वह मरकर तिर्यंच में जाते हैं। माँस और दारू खाने-पीनेवाले तो मरकर नरक में जाते हैं परन्तु माँस और दारू नहीं खानेवाले, धर्म प्राप्त नहीं पाये हुए, कषाय की वक्रता करके, माया और लोभ और राग में लीन हो गये... लीन हो गये... ऐसे जीव मरकर तिर्यंच में जाते हैं। तिर्यंचपना 'है', तिर्यंचगति 'है'। व्यवहार से वह है, नहीं –ऐसा नहीं। जैसा ये पुण्य करे, पाप करे, वैसा इसका फल है। 'नारक' आदि अर्थात् चार गति ली है।

दया, दान, व्रत भक्ति के शुभ परिणाम करे, तो उसका फल स्वर्ग और मनुष्य, सेठाई ये 'है'। यह पुण्य का फल 'है' परन्तु आत्मा के धर्म के समीप देखने पर वह वस्तु झूठी है। आ...हा...हा...! लक्ष्मीचन्दभाई! बात तो ऐसी है। 'नारक आदि' लिया न? (अर्थात्) चारों गति (लेना)। देव है – भवनपति, व्यंतरदेव, ज्योतिषदेव 'है'। आ...हा...हा...!

अढ़ाईद्वीप के अन्दर मनुष्य है। बाकी (अढ़ाईद्वीप के बाहर) असंख्य द्वीप–समुद्र पड़े हैं, उसमें असंख्य सिंह और बाघ पड़े हैं और असंख्य समुद्र हैं। हजार–हजार योजन के बड़े मगरमच्छ और मच्छ पड़े हैं। वहाँ भी... भगवान कहते हैं, उन जीवों ने भी वहाँ अन्दर में से समकित को प्राप्त कर लिया है। आ...हा...हा...! बाहर असंख्य जीव समकिती हैं। अढ़ाई द्वीप के बाहर सिंह और बाघ और नाग और मगरमच्छ और मच्छ, असंख्य पड़े हैं। वे कितने ही समकिती हैं। असंख्य गुणा मिथ्यादृष्टि है और असंख्यातवें भाग आत्मज्ञानी भी वहाँ तिर्यंच में पड़े हैं। आ...हा...हा...हा...! यह गति 'है'। अनुभवी है, अज्ञानी है, वह तिर्यंचगति है। ऐसे मनुष्य गति है, वह तो दिखायी देती है। ऐसे देव गति 'है'। यह व्यवहार से देव गति आदि चार गति हैं। **(पर्यायों के अन्य–अन्य रूप से) अन्यत्व भूतार्थ है– सत्यार्थ है...** परन्तु आत्मा को देखने पर....।

यह विशेष बात आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)